मत्स्येन्द्रनाथ शुक्ल का काव्य संवेदना और शिल्प

*डॉ. यशस्पति झा

सात दशक के बाद हिन्दी कविता में एक तरह से काव्यान्दोलनों का म हो गया। कविता रचनाकार की निजी अस्मिता की तसा के बदले मानवीय कीला अधिक महत्वपूर्ण हुई। गाँव को माटी में पैदा हुए अनेक कवि जिन्होंने संवेदना पर बाधारित सम्बन्धों के स्थान पर झूठ-फोरम के नकली रिश्तों को देखा था, ईमानदारी निष्ठा, मेहनत एवं बाबा के बावजूद गांव को बिखरते देखा था तथा स्वतन्त्र भारत में जामबादमी की भूख, तड़प तथा बेबसी को देखा था उन्होंने बिम्बों के मकड़जाल को छोड़कर एकदम ठेठ तथा नैसर्गिक मुहावरे में कविता का शिल्प गढ़ा। धूमिल के 'संसद से सड़क तक का संकलन के प्रकाशन के बाद कविता में नया मोड़ लाया। कविता में परिवेश के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजगता आयी। आर्थिक विषमताओं को अपेक्षा मानवीय संवेदना के अरण, आतंक, भय, दहशत पर कवियों को दृष्टि अधिक केन्द्रित हुई है। सातवें दशक के बाद वे कवि अधिक चर्चित हुए हैं जिन्हें किसी मंत्र का संरक्षण मिला है अथवा किसी साहित्यिक दल या राजनीतिक विचारधारा से पूर्णतया सम्बद्ध रहे है या प्रतिष्ठित साहित्यिक महन्तों के कृपा पात्र रहे हैं। हिन्दी में ऐसे कई कवि है जो चुपचाप काव्य साधना में तत्पर है, उनमें से कुछ अपनी रचनात्मक शक्ति के चलते हिन्दी कविता में प्रखरता से अपनी पहचान बना रहे हैं जो रचनाकार अपनी रचना के बल पर प्रतिष्ठित होता है वह मील के पत्थर की तरह साहित्येतिहास की गति में अपनी गणना अवश्य करा देता है। मत्स्येन्द्र शुक्ल ऐसे ही सशक्त कवि है। अब तक इनके चार काव्य संकलन प्रकाशित हो चुके है लोग उठेंगे एक दिन, शब्द जहाँ सक्रिय है, अन्त में कुछ नहीं बचता, अनन्त है यह आकाश ।

उत्तर प्रदेश के एक छोटे से जनपद प्रतापगढ़ के एक गाँव में जन्में शुक्ल जी में कविता का संस्कार बचपन से ही निर्मित हो गया था। वे प्रकृति के विविध रूपों, ग्राम्य तथा नागरिक जीवन के विविध सन्दर्भों एवं घटनाओं के तटस्य द्रष्टा न रह कर उनके संवेदनशील भोक्ता रहे हैं । सुनसान जंगल, बीहड़ घाटी, उत्तुंग पर्वत शिखर, समुद्र से महामिलन के लिए उत्कंठित प्रस्तर अवरोधों से टकराती तोड़ती सरिता की गति, चिड़ियों, हिरनों की दर्द भरी आहे, प्रफुल्लित प्रसूनों से विखरता मकरन्द, अपनी मस्ती में खोया गांव, जठराग्नि की प्रशान्ति के लिए होड़-तोड़ बमरत

श्रमिक, नगरीय चकाचौध के प्रति आकर्षित ग्रामीण, अपने बेटे की प्रतीक्षा में बिलखती माँ, न जाने कितने आयाम, न जाने कितने अनपहचाने अनछुए क्षण, न जाने कितनी मानवीय संवेदनाओं के स्तर मत्स्येन्द्र की कविताओं में उद्घाटित होते है उनके कवि मानस पर अनुभूतियों के अनेक चित्र अंकित है, ये चित्र ही शब्दबद्ध होकर कविता में रूपान्तरित होते रहते हैं कविता के अलग अलग नाम तो हैं किन्तु उनका एक चिन्तन प्रवाह है।

प्रकृति परिवर्तनशील है। परिवर्तनशीलता नूतनता का आग्रह लेकर आती है, इसलिए यह सदैव स्वागत योग्य होती है। सारे परिवर्तनों के अन्तराल में कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं जिन्हें हम अपरिवर्तित देखना चाहते हैं। युगों के संघर्ष के बाद मानव ने जिन आदशों, मूल्यों एवं मान्यताओं को उपलब्ध किया है, उनके प्रति उसकी धारणा यही है कि इनके स्वरूप में थोड़ा बहुत भेद तो हो सकता है किन्तु, उनको आवश्यकता मानव के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। सहानुभूति, प्रेम, सहअस्तित्व की भावना, त्याग, सहयोग, आदि ऐसे सांस्कृतिक मूल्य है जिनकी महत्ता हर युग में मान्य रही है। स्वायं-सिद्धि, अहंकार, भौतिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति के लिए यद्यपि सांस्कृतिक मूल्यों पर आघात भी होते रहे हैं । कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि इन्हें पददलित भी किया गया । श्रीमदभगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने जिसे धर्म की हानि कहा है वह मूल्यों का ह्रास हो है। समाज तथा राजनीति में स्वार्थी तथा अनैतिक शक्तियों की समृद्धि तथा सामान्य जन की बेचारगी की स्थिति या किंकर्तव्यविमूढ़ता में जड़ीभूत हो जाने की विवशता । कवि तथा कविता दोनों का संघर्ष इन्हीं जड़ीभूत स्थितियों तथा उनकी विधायक शक्तियों के विरुद्ध होता है । वेदव्यास, वाल्मीकि, तुलसी, कबीर, भारतेन्दु, प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध अपने अपने युग सन्दर्भ में अपनी निजी सर्जनात्मक क्षमता के साथ इसी संघर्ष की भूमिका में खड़े हैं । मत्स्येन्द्र शुक्ल की संघर्ष चेतना भी उन्हीं जड़ीभूत स्थितियों के विरुद्ध मुखरित होती है । वे कभी अतीत इतिहास में झांकते हैं, कभी पूर्वजों की जययात्रा का जायजा लेते हैं, कभी पौराणिक चरित्रों के अन्तरमन में पैनी दृष्टि से निहारते हैं, वे उन्हीं अनुत्तरित प्रश्नों का जवाब पाना चाहते हैं जिनसे हर युग का संवेदनशील रचनाकार जूझता रहा है । 'पूर्वज कहाँ नहीं गये' कविता में बड़े सहज ढंग से मानव सभ्यता के इतिहास को देखा गया है। पूर्वजों के पूर्वज गाय-भैंस चरा रहे थे, कालान्तर में बसने के लिए झोपड़े बना लिये । नदी पहाड़ मैदान सभी दुघ स्थानों पर उनकी यात्राएँ हुई, उर्वर जमीन से परिचय प्राप्त करके खेती-बारी की शुरुआत हुई। हर युग में, हर परि स्थिति में वे 'आदमी' ही बने रहे। न जाने कौन सी हवा चली कि आदमी आदमियत ही छोड़ बैठा, अब तो वह राख और धुएँ के बीच तलाश रहा स्वार्थ के क्षुद्र कण (कितना शान्त है जंगल, पृ० -- ५२) इतिहास कल्पना नहीं है, प्रमाणहीन अनुमान के सहारे इतिहास को म तो समझा जा सकता है और न पुनर्लेखन होता है स्वस्थ मानसिकता के अभाव में अतीत हमारे लिए

प्रेरणा का स्रोत न रहकर धूमिल छाया मात्र रह गया है

रतौंधी ग्रस्त वर्तमान मुलुर- मुलुर ताक रहा अतीत का आकारहीन धूमिल दर्पण नील चकत्ते सा जाने क्या दिपता है समझ में नहीं आता यात्राओं का अर्थ ।

'कहाँ है पुधिष्ठिर' कविता में युधिष्ठिर के माध्यम से धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अ शान्ति के द्वारक प्रश्न पुनः उमारे गये हैं । युधिष्ठिर ऐसा मिथकीय र की उपाधि से विभूषित होते हुए काल की परिस्थितियों से बुरी तरह धर्म के बावजूद करना पढ़ता है। युधिष्ठिर स्वयं ही एक अनुसर गया है। किसे चिन्ता है समस्त प्राणियों के दुख-दर्द की, उनकी भावनाओं एवं की, मनुष्य को तो अपनी महत्ता की स्थापना के लिए युद्ध का विनाशक इतिहास की बातुरता होती ही है। वह उन जीव-जन्तुओं से कहाँ सबक लेता है जो ह जीवन चलाते हैं, उसे तो राज्य चाहिए, वैभव का विलास चाहिए। युद्ध का सम्पूर्ण समाज नहीं होता है। वह तो कुछ अहंकारी एवं स्थायी लोगों के ही प परिणाम है-

निर्दोष समाज का युद्ध से क्या मतलब किन्तु ढेर होते हैं वही युद्ध भूमि में इतिहास ऐसे में चल देता है अनिश्चय की ओर (कितना शान्त है जंगल पृ० ७५)

व्यक्ति कभी भी सम्पूर्ण व्यवस्था से अलग, स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष निर्णय नहीं ले पाता है। युधिष्ठिर ऐसे ही व्यक्ति है जो क्रूर एवं हिंसक कर्मों के भावी परिणामों के प्रति है किन्तु विवश तथा पराश्रित है। युधिष्ठिर की मानसिकता से कवि की मानसिकता का गहरा तादात्म्य परिलक्षित होता है। अपनी आस्थावादी जीवन दृष्टि के कारण दि मत्स्येन्द्र भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कौन बच पाया है महामाया के जाल से' ब्रह्म का लिखा कौन मैट पाया है पृथ्वी पर महाकाल का आदेश स्वीकार करो वर्तमान सत्य है (कितना शान्त है जंगल-पृ० ६६)

पूरी कविता में अत्यन्त कसावट के साथ जिन प्रश्नों से जूझने की चेष्टा है, उसकी रहस्य वादी परिणति उसे अंततः कमजोर कर देती है। फिर सब कुछ भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है। जैसे बाज का नाम भारतीय ईश्वर के सहारे बैठकर बुराइयों के विरुद्ध अपनी लड़ाई को स्थगित कर देता है।

अनेक राजनीतिक व्यवस्थाओं से गुजरकर हम उत्तम राजनीतिक व्यवस्था जनतन्त्र को पा सके है। किन्तु व्यवस्था चाहे जितनी अच्छी हो उसके संचालन का दायित्व आदमी के ही ऊपर होता है। आदमी अपने स्वायं तथा सुविधाओं की दृष्टि से उत्तम सो उत्तम व्यवस्था को दूषित कर देता है। भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था भी निहित स्वार्थी तथा भ्रष्टाचरणों से खोखली होती जा रही है। कागज पर जितने विकास के बांकड़े छपते हैं, योजनाओं को जितनी डींग मारी जाती है, व्यावहारिक रूप से उनका ष्टगत नहीं होता है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अन्तविरोधों के प्रति अधिकांश बुद्धि के मन में

चिन्ता व्याप्त है। मत्स्येन्द्र भी इसी चिन्ता से उद्विग्न है पुद्ध. जो है । जनतन्त्र सार्थक हो रहा खबरों और मुद्दों के दम पर बन फर्जी मुद्दे छपते हैं। बने से

अखबार उछलते हैं पूरे देश में भोजनोपरान्त जब कभी संसद में मचता है हंगामा का पहरेदार परेशान बन्द करते हैं दौड़-दौड़ खिड़कियाँ (लोग उठेंगे एक दिन - पृ० ६१)

मिल की तरह शुक्ल जी भी भारतीय संसद के आगे अनेक सवाल फेंकते हैं। अपने हो साधन में लिप्त भारतीय नेताओं की संसद से कोई जवाब लौटकर नहीं आता है। हत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर संसद चुप रहती है। वैसे अनेक बेहूदा प्रश्नों से टकराती हुई वह मनाक स्थिति तक संघर्ष पर उतारू हो जाती है। सुरक्षा गार्डों को दौड़-दौड़कर कियाँ बन्द करनी पड़ती हैं ताकि खबर हवा में न फैल सके । व्यवस्था के पहलुओं विचार कैसे हो ही सकता है क्योंकि ऊंचे दामों में बिक रहे ऊँचे लोगों को खरीदा जा का है आलोच्य कवि का स्पष्ट मंतव्य है

व्यवस्था के पहलुओं पर कैसे हो विचार जब भाचार संहिता नहीं है देश में ऊंचे दामों पर बिक रहे ऊँबे नागरिक (कितना शान्त है जंगल - पृ० २६)

बि में पैदा हुए, पले, बढ़े शुक्ल जी के मन में ग्राम्य जीवन की सादगी, सहजता तथा आत्मीयता की गहरी छाप है। गाँव की लोक संस्कृति तथा सम्वेदना को लीलती नगरीय भ्यता के आतंक से उनका हृदय विचलित हो जाता है। छोटे-छोटे गाँव विकास की करणों की पहुँच से परे, लेखपाल के बस्ते में उपेक्षित पड़े हुए हैं। सर्दी, गर्मी, वर्षा में कृति के साथ जूझते लोगों में अद्भुत जिजीविषा तथा मस्ती होती है। साँस की ठंडी में पसीना सुखाकर मस्त पहलवान की तरह ठहाका लगाता गाँव सभ्यता के नाम किन-किन विवशताओं तथा अव्यवस्थाओं को ढोने के लिए बाध्य है पहले जंसी स्थिति नहीं रह गयी फिर भी पुराना जमाना जैसा था नहीं है अब फिलहाल जो है सभ्यता के नाम पर ढोना पड़ेगा हमें हम हवा में गुमनाम शब्द हैं। (लोग उठेगे एक दिन - पृ० १२)

देश को लूटने व स्वतन्त्रता से लूट रहे हैं। राजा महारा और आसानी से सत्ता पर काबिज सम्पदा का नारा देकर अमीरों की जमात में शामिल हो औरों की हालात में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हमा "कविता में इस तथ्य को उजागर किया है। रामदीन कास्टर बजा रहा है क्योंकि वह मजदूर है, उसे तो मजदूर रहना हो कहता है (आज भी रामदीन से क्या मतलब जहाँ तक चाहे वहाँ तक पहुँच से दुनिया

उसकी दुनिया तो वहीं तक सीमित है। जहाँ तक राजा की बगिया है। (लोग उठेंगे एक दिन- १०१५) ग्राम्य जीवन की इस त्रासदी की मौन स्वीकृति के बावजूद कवि नियतिवादी नहीं है। की उपस्थिति तो दार्शनिकों तथा कवियों दोनों के

अनुभवों से प्रमाणित है। सामान्य तो दुःख का जीवन जीते जीते उसका आदी हो चुका है। जन दुःख का होता है तो मनुष्य को बेचारगी घेर लेती है। लेकिन किसी के सहयोग की प्रोक्षा बिना अपनी लड़ाई को खुद लड़नी होगी। चाहे रामदीन की परवशता हो, चाहे की उपेक्षित स्थिति हो, चाहे मध्यवर्ग के समक्ष बड़ी अनेक चुनोतियों हो, सबको विरुद्ध बने पद्मन्त्रों के विरुद्ध खुद खड़ा होना होगा जीवन एक लड़ाई है इस लड़ाई में कोई साथ नहीं देता । धर्मनिरपेक्षता के नाम पर न जाने क्या-क्या हो रहा है, इस देश में दंगा-फसाद, बाम, कमजोरों का वध, सम्बन्धों में नग्नता। इन परिवर्तनों की पीड़ा का अहसास लोगों को क्यों नहीं हो रहा है। नारी का प्रस्थान किस ओर हो रहा है, इसे समझने की चेष्टा सो नहीं होती प्रचंड धूप में आग बन वह जा रही उस तरफ जहाँ आदमी के रिश्तों का उड़ रहा धुंआ ।

(लोग उठेंगे एक दिन - पृ० ४०) प्रश्न है कि नया नारी की समस्त ऊर्जा एवं शक्ति नंगेपन तक सीमित है, क्या सम्बन्धों की पवित्रता को नकारने में ही उसके जीवन की सार्थकता है ? पाश्चात्य सभ्यता की अंधी नकल के कारण उच्चतर मूल्यों को नकारकर नारी जिस रास्ते जा रही है वह रास्ता दैहिक भोग के ही शिखर पर पहुँचता है । नैतिक मूल्यों का ह्रास सम्पूर्ण मानवीय समाज में हो रहा है। भारत की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक चिन्ताजनक है। जो ताकतवर है वह कानाफूसी करके लोगों में अविश्वास तथा मतभेद पैदा करके लड़ाई करा देता है। प्रजातन्त्र में भी वही पुराना सामन्ती नारा गूंज रहा है ती का अद्‌भुत नारा खा-पीकर नित मौज उड़ालो जो जितना गिर सके, वहाँ तक गिरने का अभ्यास कराओ"

बों बेबसों के उत्थान की बड़ी-बड़ी योजनाओं के बावजूद पूँजीपतियों का ही वरव त हुआ है। योजनाओं तथा नये कार्यक्रमों की राशि या ठेकेदारों को मालामाल करती है या नेता हों तथा भ्रष्ट अधिकारियों को भूख-प्यास से तड़पते व्यक्ति को जैसे तेस की बूंदों से तृप्त कर दिया जाय, या ऊँट के मुंह में जीरा की कहावत चरितार्थ कर जाय उसी तरह योजनाओं का लाभ सामान्य जन तक पहुँचता है। शुक्ल जी ने 'रोटी का प्रश्न' कविता में इसी समस्या की ओर संकेत किया है। जहाँ पूंजीपतियों ने सारी गंजी दबा लो है। जहाँ ठीकेदारी के माध्यम से लूटपाट का हो बाजार गर्म है। ऐसे दाहौल में यदि कोई व्यक्ति रोटी का सवाल उठाता है तो उसे देशद्रोही मान लिया जाता है

रोटी का जब प्रश्न उठाया देशद्रोह का चार्ज लगा है मरण-शिखा पाने से पहले जाने कितना दाग लगा है। 'योजना बनाकर' कविता मुख्य रूप से योजना की ही परिणतियों को उजागर करती है। विदेशों से कर्म लेकर योजन भर योजना बन जाती है जिसमे मंत्री कुछ दिनों तक मौज उड़ाते हैं किन्तु जनता नंगी भूखी ही रह जाती है मंहगी रोटी सब कुछ मंहगा ऐसा जब हम प्रश्न किये तो बोल पड़े वे हाथ जोड़कर भइया नाही हम बहुधी । चारों ओर शोषण हो शोषण

है धन का शोषण यहाँ हो रहा जन का शोषण यहाँ हो रहा फिर भी पूंजीपति कहते हैं मेरे बस में सारी दुनियाँ ।

शुक्ल जी जहाँ अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विडम्बनाओं का सम्वेदनात्मक चित्र उकेरते हैं वहीं रचना-प्रक्रिया के अनेक संकटों तथा अन्तविरोधों से भी जूझते हैं। अवमूल्यन के दौर में सत्य की पकड़ निश्चित रूप से कठिन होती है। जब समाज स्वयं हो अन्धत्व का वरण करने पर आमादा है तो क्या ऐसी स्थिति में सामायिक शब्दों की शाश्वत अर्थवत्ता को पहचानकर रचनात्मक वाक्यों का गठन हो सकता है

समाज जब अंत्य का वरण करता है पुष्टिहीन राष्ट्राध्य अनार्मन के सहस्र द्वार पार कर बनाता है कंठ में बेहद कठिन होता है उस क्षण नकुलयत वहाँ सोये हैं सामयिक शब्द वाक्यों में शब्द रस विचार गढ़ पाना ।

अमूल्यन की संक्रान्ति से भाषा भी अछूती नहीं है। जिस देश में शब्द को है, उसी देश का नेता शब्द को झूठ और मिथ्यात्व का हथियार बनाकर रहा है। शब्दों का पैनापन कुंठित हो गया है। शब्द यदि मदारियों के मुंह से 1 है तो उसमें कृत्रिमता का बावरण होता ही है । इसीलिए जनता भी शब्दों के उन्हें परा जाती है। कवियों और रचनाकारों के बागे यह चुनौती है धार को कैसे पैनी रखें जिस समाज में कल्पना, इच्छा, विचार तथा भा समाप्त हो रहा है कवियों का दायित्व है कि वे उनके हक को बरकरार रख भीड़ को भेंड़ नहीं बल्कि शक्तिशाली बाग मानते हैं। भीड़ बटोरना कभी-कभी भी होता है आदमी को जब कभी बटोरेंगे हम

मोड़ में भीड़ आग बन धधकेगी कई दिन कई रात तक (लोग उठेंगे एक दिन मनुष्य यद्यपि पीड़ा तथा विवशता के अथाह जल की भँवर में घिर गया है। ह सुरक्षावाची शब्द नहीं प्रस्फुटित हो रहे हैं। परियाँ भी अपने गीत बन्द करके हुए है। लगता है प्रेरणा के सारे स्रोत सूख गये हैं। इसी तरह के माहौल में कवि को तोड़कर अपने गीतों को मुखरित करना है। प्रकृति ने सौन्दर्य को शब्दों में बांधना है। ऐसे शब्द चित्र रचते हैं जिन्हें अन्तःकरण के दर्पण में उसी रूप में बार-बार निहाय सके, आनंदित हुआ जा सके। कवि भौतिक जगत के आवरण के परे से बाती हुई प्रेरण के प्रति भी जिज्ञासु है। ऐसे स्थलों पर उसमें एक तरह की रहस्यवादिता क है। उसकी जिज्ञासा अघोलिखित शब्दों में रूप ग्रहण करती है कहाँ है मानसर कहाँ है देवलोक पंचतत्व के ऋत्विज कहाँ है कहाँ है आत्मा का वैभव सुख सन्तोष अगम आनन्द कुछ तो बताओ दे वो संकेत हो नविन है। स आच्छादित खामोश है जंगल बर्फ की नदियाँ सिकोड़ रहीं बाहें ठिहरते काँपते वृक्ष मांग रहे धूप नहीं सुनता प्रगल्भ आकाश बादलों की रजाई में न जाने कहाँ छिपा है सूर्य कभी तो संसद में गूंजेगी जंगल की आबाज ।

(कितना शान्त है जंगल - पृ० १४) २) उपर्युक्त कविता में 'संसद' शब्द के प्रयोग से पूरी कविता व्यंग्यात्मक हो गयी है।

'जंगल' केवल जंगल न रहकर वनवासियों का प्रतीक बन गया है। जिसमें काँपते हुए लोग अपने हौ यूनतम अधिकारों की माँग कर रहे हैं। लेकिन सुविधा भोगी संसद उसे अनसुनी कर दे है, रही है। शुक्ल जी की कविताओं में अलंकरण की प्रवृत्ति बहुत कम है। उन्होने अत्यन्त चिर परिचित उपमानों के द्वारा अनुभवों को सम्प्रेष्य बनाया है। कुछ उपमान तो बिल्कुल नये तथा ताजे हैं—

1. लेखपाल के बस्ते सा उपेक्षित पड़ा हुआ
2. ओर दिनें रहती है उदास जैसे परदेशी की भोरत
3. हम हवा में गुमनाम शब्द हैं।
4. पंक्षी सा नाच उठा मन

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मत्स्येन्द्र जी प्रकृति और लोक संवेदना के सहज कवि हैं। अनुभवों में निच्छल, अभिव्यक्ति में अकृत्रिम, माधुनिक विडम्बनाओं से चिन्तित, जीवन की आस्था से सम्पृक्त, उनकी काव्य-चेतना दर्द में भी विहंसती रहती है।

***व्याख्याता**
व्याकरण
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
अलवर (राज.)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. साकेत, अष्टम सर्ग पृ. 2th34
2. साकेत, अष्टम सर्ग, पृ. 234
3. साकेत एक अध्ययन, पृ. 81
4. साकेत, पृ. 22
5. आधुनिक हिन्दी कविता प्रेम और सौन्दर्य, डॉ रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, पृ 284, सं. 2015
6. साकेत, पृ. 133
7. साकेत, पृ. 73
8. साकेत. प्र. 198